दण्ड का न्याय

यह कैसे निर्धारित कर सकते हैं कि दंड न्यायसंगत है? जैसा कि हमने देखा कि उपयोगितावादी दृष्टिकोण में दंड एक आवश्यक बुराई है. जिसको तब न्यायसंगत ठहराया जा सकता है जब इसका उपयोग समाज की किसी बड़ी बुराई को रोकने केलिए किया जाता है. उनका मानना है कि दंड अपने आप में न्यायसंगत न होकर न्यायसंगत साध्य केलिए है. दूसरी ओर, प्रतिशोधात्मक सिद्धान्तकार यह मानते हैं कि यह उस बुराई की बहाली केलिए है जो घटित हो चुकी है.

*“कानूनों को तोड़कर, अपराधी अपने हितों को आगे बढ़ाने केलिए, या अपनी इच्छाओं को पूरा करने केलिए गलत तरीके का उपयोग करते हैं.-----दंड इस प्रकार के संतुलन को बहाल करता है( प्रतिशोध,वापस भुगतान,इत्यादि) जिसको अपराधी ने अपने पक्ष में मोड़ने की कोशिश की थी. यह रूपक अक्सर न्याय की संविधि में संतुलन का प्रतिनिधित्व करता है (प्रतिशोध केलिए एक तलवार के रूप में).”*

*न्याय का प्रतिनिधित्व करने वाली* संविधि, नियम के रूप में, आँखों पर पट्टी बांधकर संकेत करती है कि कानून आदर्श रूप में प्रत्येक व्यक्ति के साथ समान व्यवहार करता है. अर्थात् इन प्रावधानों को लागू करते समय किसी भी व्यक्ति के साथ उसके दर्जे,वर्ग,रंग,जाति,लिंग,वर्ण के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा.इस कसौटी का उपयोग करते हुए न्यायसंगत अपराध का एक लक्षण समान अपराध केलिए समान दंड लागू किया जाना है. अपराधियों को दण्डित करने संबंधी एक बड़ी नैतिक समस्या न्यायधीशों की ‘*विवेक’* के उपयोग की मात्रा है. कुछ लोगों का मानना है कि सजा में न्याय को उन्नत करने केलिए उनको छुट दे देनी चाहिए क्योंकि न्यायधीश अपराध विशेष के संदर्भ में और उसकी परिस्थितियों के अनुकूल सजा को निर्धारित करने में सक्षम रहता है. वे मानते हैं कि ‘*न्यायिक विवेक*’ प्रावधान कठोर व्यवस्था में लचीलापन लेन की स्वीकृति देता है. इसके विरोधियों का तर्क यह है कि यह अनिवार्य क़ानूनी सजा थोपने के समतुल्य है जो समान अपराधों केलिए असमान व्यवहार है.

एलीजाबेथ बेअर्द्सले अपने निम्न लेखमें ‘अनिवार्य सजा के नीतिशास्त्र’ का परीक्षण करती हैं. वह सजा को उसकी आनुपातिकता,एकरूपता और निश्चयात्मकता के दृष्टिकोण के साथ विश्लेषण करती है और बताती है कि प्रत्येक लक्षण कैसे अनिवार्य सजा से सम्बन्धित है. लेखिका तर्क देती है कि *अनिवार्य निश्चयात्मक सजा* नैतिक रूप से कैसे अनिश्चयात्मक सजा से श्रेष्ठ है क्योंकि वे ज्यादा मानवीय हैं, ज्यादा निवारक प्रभाव रखते हैं, और व्यक्ति के वैयक्तिक अधिकारों को संरक्षित करते हैं. बेअर्द्सले आगे तर्क देती हैं कि *अनिवार्य सजा* दंड में आनुपातिकता और एकरूपता में नैतिक रूप से इच्छित लक्षण को ज्यादा अच्छा संरक्षित करती है.

नैतिक दृष्टि से अपराधियों को दंड देने के संदर्भ में नैतिक क्षेत्र का दूसरा प्रश्न ‘*याचिका सौदेबाजी’* का बढ़ता उपयोग है.

*याचिका सौदेबाजी* एक तरह का समझौता है जो (भारतीय स्थिति टिप्पणी में देखनी है) अभियोजक(सरकारी वकील/वादी/चार्जर) अभियुक्त (मुलजिम/प्रतिवादी) के बीच होता है. जिसमें अभियुक्त उस अपराध से जुड़े हल्के दंड के वादे के बदले में कम अपराध के लिए दोष ( बिना किसी मुकदमे) को स्वीकार करने केलिए सहमत होता है. इस प्रकार, इसमें अपराधी ने जो मूलतः अपराध किया है, उसकी सजा से भिन्न सजा पाता है. क्या याचिका सौदेबाजी न्यायसंगत है? कुछ का तर्क है कि यह ठीक है इसलिए हो सकती है क्योंकि यह अदालतों की भीड़ को कम करने में मदद करता है, तीव्र न्याय को प्रोत्साहित करता है,और दोषी व्यक्ति को तुरंत सजा देने का माध्यम बनता है जो अन्यथा दंडित होने से बच जाता है. विरोधियों का तर्क है कि सौदेबाजी याचिका गलत है क्योंकि इसका परिणाम ऐसे व्यक्ति को सजा देना है जो साक्ष्य के आधार पर दोषी नहीं है और इस प्रकार, संविधान द्वारा निर्धारित प्रक्रिया में हस्तक्षेप करता है. इसके साथ यह भी तर्क है कि भय और अज्ञानता से जनित असमंजस के चलते निर्दोष व्यक्ति भी दण्डित किया जा सकता है. उपयोगितावादी याचिका सौदेबाजी के सम्र्थ्खैन क्योंकि यह ज्यादा प्रभावकारी निवारक पैदा करता है और अदालती प्रक्रिया के खर्च को कम करता है. फल निरपेक्षवादी याचिका सौदेबाजी का विरोध करते हैंक्योंकि इसका परिणाम केलिए दोनों -दोषी ( उस अपराध केलिए कमसजा मिलती है जो उसने किया है) और निर्दोष( जिसको किसी भी प्रकार की दंड नहीं मिलना चाहिए) के लिए कम *उचित दंड* में होता है.

*मृत्युदंड* की सजा के प्रावधान का उपयोग न्यायिक तंत्र में गहरी और तीव्र बहस का विषय बना हुआ है. जो वर्तमान समय में ओर भी अधिक विवादास्पद है. मृत्यु दंड के विरोधी तर्क देते हैं कि यह मौलिक रूप से ही गलत है कि राज्य सोचे-समझे ढंग से (यहाँ तक की ज्यादा जघन्य अपराधों के दंड में भी) मानवजीवन को खत्म करे. इसके समर्थक कहते हैं कि कुछ अपराध ऐसे भयानक और जघन्य हैं न्यायपूर्ण दंड केलिए मृत्यु के जुर्माने से कम सजा हो ही नहीं सकती. (भारत की स्थिति क्या है)

हाल ही में अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय में अश्वेत अभियुक्त के वकील ने तर्क दिया कि मृत्यु सजा अश्वेतों के खिलाफ पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर किये जाते हैं. उन्होंने ने सारे आंकड़े प्रस्तुत किये कि समान अपराधों में भी श्वेत व्यक्तियों की बजाय अश्वेत व्यक्तियों को मिलनेवाली मृत्यु की सजा का अनुपात कहीं ज्यादा है. किन्तु यदि मृत्यु दंड एक समूह की बजाये दूसरे समूह पर ज्यादा लागू होता है तो क्या इसका अर्थ यह है कि इसका *उपयोग* अनुचित है?

इसके बाद के दूसरे लेख में, रोबर्ट जॉनसन ने अलबामा जॉनसन का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है, जिसमें तर्क दिया है कि *‘मृत्युपंक्ति’ ( मृत्यु कक्षों की कतार) के वातावरण का परिणाम कैदियों का सम्पूर्ण अमानवीयकरण और सजा से पहले एक प्रकार की जीवित मृत्यु का कारण बनती है.*उनका कारावास क्रूरता का एक रूप है जो यातना के तुल्य है. वह निष्कर्ष देता है कि अपने सम्पूर्ण प्रयोजन व इरादे में, मृत्यु दंड समाज में यातना के साथ मृत्यु है. जो स्पष्टरूप से अपने मूल चरित्र में बर्बरता का अवशेष है.

(एलीजाबेथ बेअर्द्सले)

*अनिवार्य सजा का नीतिशास्त्र (Mandatory Sentencing)*

क्या आपराधिक अपराधों केलिए अनिवार्य सजा नैतिक आधारों पर न्यायसंगत कही जा सकती है? यह प्रश्न अक्सर *विवेक* की बजाय *भावना* आधारित होता है. सजा की तीन विशेषताएँ ऐसी हैं जिनको अनुमोदन के साथ स्वीकृत किया जाता है और वे किसी न किसी रूप में अनिवार्य सजा के व्यवहार के साथ जुड़े हुए हैं. इस संदर्भ में बेअर्द्सले तीन विशेषताओं- *निश्चयात्मकता, आनुपातिकता और एकरूपता. ( जिनके आधार पर अनिवार्य सजा को नैतिक कहा जा सकता है)* प्रत्येक विशेषता के संदर्भ में सबसे पहले यह पूछती हूँ कि क्या यह वास्तव में एक है जिसे हमें मंजूरी देनी चाहिए और दूसरा, यह अनिवार्य सजा के साथ कैसे जुड़े हुए हैं?

*निश्चयात्मकता---*

निश्चयात्मक सजा वह सजा है जिसमें कैद की अवधि निश्चित होती है. बजाय अनिश्चयात्मक या खुली कैद के जिसमें दोषी की रिहाई की तारीख बाद में निर्धारित करने केलिए छोड़ दी जाती है. बेअर्द्सले तीन आधारों पर निश्चयात्मक सजा को अनिश्चयात्मक (भारतीय अनुभव/उदाहरण)सजा से नैतिक रूप से ज्यादा ग्राह्य मानती हैं-

1. यह अधिक से अधिक निवारक शक्ति हो सकता है. (भारतीय अनुभव/उदाहरण) .
2. यह ज्यादा मानवीय हैं.
3. यह प्रत्येक नागरिक चाहे वह संभावित अपराधी है या कानून की पालना करनेवाला, उनके आवश्यक अधिकारों का संरक्षण करता है.

यधपि लेखिका के पास निवारक संबंधी आनुभाविक उदाहरण अतिसीमित हैं. इसलिए,बहुत विश्वास के साथ दावा नहीं किया जा सकता कि निश्चयात्मक सजा अनिश्चयात्मक सजा से ज्यादा निवारक शक्ति रखती है. किन्तु यह मान लो कि ऐसा है. सजा की निश्चितता एक चर है जिसका शायद अभी तक अपराध दर के साथ सम्बन्ध का समाज वैज्ञानिकों द्वारा पर्याप्त रूप से परीक्षण नहीं किया गया है. किन्तु यदि जैसा कि सामान्य बोध के आधार पर लगता है, यह चर निवारक का सहसंबंधी पाया जाता है, और यह निश्चयात्मक सजा का मामला बनता है. निश्चयात्मक दंड स्वभाविकतौर पर अनिश्चयात्मक दंड से ज्यादा निश्चितता रखता है. तार्किक रूप से, यह प्रश्न कि क्या सजा हरहाल में दी जायेगी, यह इस प्रश्न के समान नहीं है कि क्या इसकी एक विशेष कालावधि है.ज मनोवैज्ञानिक रूप से, निश्चितता की एक सामान्य आभा सजा को निर्धारित करने केलिए संलग्न करती है.

यह ध्यान रखना चाहिए कि यह तथ्य है कि निश्चित सजा में भी निवारक शक्ति कम या हटाई जा सकती है, यदि दोषसिद्धि अनिश्चित होती है.

यदि निश्चयात्मक सजा को अस्वीकार्य रूप से कठोर माना जाता है,या तो अपने आप में( मृत्यु दंड) या अपराध की गंभीरता के सम्बन्ध में,( नशे का अपराध) जज और न्यायधीश सजा केलिए अनिच्छा से अनिच्छुक हैं.

इसका अर्थ यह नहीं है कि निश्चयात्मक सजा एक वर्ग के   
रूप में अनिश्चयात्मक सजा से ज्यादा निवारक शक्ति नहीं रखती है. यद्धपि यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि दूसरे महत्वपूर्ण चर हैं जिनका अध्ययन किया जाना चाहिए.

अपनी पुस्तक “आपराधिक सजा” न्यायधीश मार्टिन फ्रेंकले ने अनिश्चयात्मक सजा पर एक जोरदार अभियोग लगाया है. उनका आरोप है कि वे क्रूरता और अन्याय के जनक हैं. और अनिश्चितता तथा लाचारी का घृणास्पद वितान खोलते हैं. वह अनिश्चयात्मक सजा को अंगीकार करने की धारणा को *पुनर्वास आदर्श* से गृहीत विचार के रूप में देखते हैं. और यह तर्क देते हैं कि यह असमंजसपूर्ण और अव्यवहार्य है. सजा के लक्ष्य के रूप में ‘पुनर्वास’ का विश्लेषण देखने योग्य है किन्तु इस बात से इंकार करना कठिन है कि अपराधियों पर निश्चयात्मक सजा से ज्यादा पीड़ादायक और अपमानजनक प्रभाव अनिश्चयात्मक सजा का रहता है. कुछ तर्क दे सकते हैं कि अतिरिक्त पीड़ा को दोषी की सजा के एक हिस्से के रूप में देखा जाना चाहिए. इसके अलावा, अनिश्चयात्मक सजा दोषी की मानवीय गरिमा का अनादर भी है.

तीसरा, आधार जो यह बताता है कि निश्चयात्मक सजा नैतिक रूप से ज्यादा प्राथमिक है, काफी मजबूत है. यह मान्यता है कि निश्चयात्मक सजा प्रत्येक नागरिक द्वारा किए गए उसके कार्यों के क़ानूनी परिणाम के भविष्यवाणी का अधिकार सुरक्षित रखता है. फ्रेंकले इस दावे का स्पष्टरूप से समर्थन करते हैं जब वह लिखता है कि “न्यायपूर्वक क़ानूनी व्यवस्था में, *कानून ज्ञेय और सुगम* होगा, ताकि व्यक्ति कानून की पालना का अर्थ जानने के साथ-साथ अपने दायित्व और उसके परिणाम तथा उनकी सीमाएं और अपने आचरण के वैधानिक परिणामों को भी जान ले. फ्रेंकले स्पष्ट करते हैं कि उदारता की सीमाएं समाप्त हो जाती हैं जब किसी क़ानूनी परिणामों की भविष्यवाणी केवल इस हद तक की जा सकती है कि जो इसे करता है वह जनता है कि कुछ अवधि केलिए अथवा अन्य दंड केलिए उतरदायी होगा.

दूसरे लेखक जिन्होंने व्यक्तियों के अधिकारों पर जोर दिया है जो उन्हें अप्रत्याशित अनुचित हस्तक्षेप से स्वतंत्र रहने में सक्षम बनाता है वह दार्शनिक एच.एल. ए. हार्ट हैं. हार्ट इस सिद्धांत को निश्चयात्मक और अनिश्चयात्मक सजा के मुद्दे पर लागू नहीं कर हैं. किन्तु लागू आसानी से किया जा सकता है.

लेखिका ने तर्क दिया है कि ऊपर विवेचित तीनों आधार निश्चयात्मक सजा नैतिक रूप से अनिश्चयात्मक सजा से ज्यादा बेहतर है किन्तु यह निष्कर्ष अनिवार्य सजा का स्वत:सिद्ध तर्क नहीं देता है; इसलिए, इन दोनों के बीच रिश्ते का परीक्षण करना चाहिए.

प्रथम, यह स्पष्ट है कि दोनों निश्चयात्मक और अनिश्चयात्मक सजा क़ानूनी रूप से अनिवार्य हैं. जैसा कि क्रेंकले ने चिन्हित किया है कि “ कई राज्य विधानसभाओं ने अपने कानून के हालिया संशोधनों में अनिश्चयात्मकता का विकल्प चुना है.

किन्तु हमें यह भी देखना चाहिए कि क्या निश्चयात्मक सजा केलिए अनिवार्य सजा आवश्यक शर्त है? दूसरे शब्दों में, क्या निश्चयात्मक सजा विवेकाधीन सजा के द्वारा प्राप्त की जा सकती है? ===================

किन्तु निश्चयात्मक सजा इस तरह से थोंपना ऊपर बताये गए तीन नैतिक लाभों मेसे केवल एक – दोषी के साथ मानवीय व्यवहार, को ही बनाये रख सकेंगे.

=====================

इसी तरह की कठिनाइयां निश्चयात्मक सजा से सम्बन्धित बचे हुए तर्कों के साथ है. जैसे- यह दावा कि वे हमारे कृत्यों के क़ानूनी परिणामों की भविष्यवाणी करने के अधिकार को सुरक्षित रखने में सक्षम हैं. यदि किसी न्यायधीश द्वारा देने वाली सजा के सभी परिणाम पहले से ही पता हो तो हम ‘न्यायपूर्ण क़ानूनी आदेश’ की शर्त पूरी नहीं रखते हैं जैसा कि फ्रेंकले और हार्ट बताते हैं.

============================

निश्चयात्मक सजा केलिए अनिवार्य सजा की आवश्यक शर्त तीनों नैतिक लाभ रखती है. मेरा निष्कर्ष यह है कि सजाओं में निश्चयात्मकता अनिवार्य सजा केलिए अच्छा नैतिक तर्क है.

*आनुपातिकता—*

सजा की दूसरी विशेषता, अपराध जो उस पर थोंपे गए हैं उनकी ‘*उचितता’ है.* जिसके लिए ज्यादा संगत शब्द *आनुपातिकता है.* जो हर्सच के शब्दों में  *“अनुरूप अर्हता का सिद्धांत” है.*

यह विवादास्पद नहीं है और जैसा कि नैतिकता की भी मान्यता है कि सजा अपराध की गंभीरता के आनुपातिक होनी चाहिए. यद्धपि इसके सम्बन्ध में प्रश्न उठाये जाने चाहिए. मसलन- पहला, अपराध की गंभीरता की संकल्पना क्या है? दूसरा, यह कौन निर्धारित करेगा कि विभिन्न तरह के अपराध कितने गंभीर हैं?

इसके सम्बन्ध में हाल ही कि दो व्याख्याएँ मददगार होंगी. जब हम ‘*अपराधों की गंभीरता’* की बात करते हैं तो जैसा कि हिर्सच कहते हैं अपराध के दो अवयव- *हानि और दोषिता*  हैं. हानि की मात्रा का अर्थ उसे हुई चोट या जोखिम की मात्रा है. दोषिता का अर्थ अपराधी उसके अपराध केलिए नैतिक रूप से निंदनीय है.

जब एक निश्चित प्रकार के आचरण को आपराधिक होने का निर्णय किया जाता है तो इस सम्बन्ध में निर्णय का आधार उसके आचरण से हुई हानि अथवा जोखिम की मात्रा रहता है. बेशक, यह निर्णय दूसरे ओर ज्यादा महत्वपूर्ण निर्णय पर कि उसके आचरण से हित अथवा हितों संबंधी मूल्य की कितनी हानि हुई है, पर आधारित होता है. *हानि और हितों* संबंधी निर्णय ही केवल आचरण के आपराधिक होने को स्थापित नहीं करता है, अपितु अपराध की परिभाषा भी इसको निर्धारित करती है. ये निर्णय लेने के आरोप वाले हमारे विधायक हैं. उनके निर्णय का ज्यादातर हिस्सा उन समुदायों के विचारों के साथ होते हैं जिनके लिए वे कानून बनाते हैं., उनके खिलाफ विरोध प्रदर्शनों के सापेक्ष उलंघन से प्रभावित हो सकते हैं.

ये आपतियां मुख्यतः उन अपराधों के खिलाफ निर्देशित हैं जिनको ‘पीड़ितों के बिना अपराध’ माना जाता है. इनका गैर-अपराधीकरण करने केलिए किए गए वर्तमान आन्दोलन काफी हद तक सफल हुए हैं. किसी भी मामले में, अपराध जिनको ‘पीड़ितों के साथ अपराध’ के रूप में माना जाता है, उनकी आपराधिकता को लेकर तुलनात्मक रूप से कम विवाद उत्पन्न करता है. ऐसे भी कृत्य हैं जिनका दर्जा ‘पीड़ितों के बिना अपराध’ है या ‘पीड़ितों के साथ अपराध’, बहस का विषय है. इस संदर्भ में हम यहाँ पर्यावरण, अजन्मे बच्चे, जानवर, कौशल संबंधी कार्यों इत्यादि के खिलाफ अपराधों के बारे में सोच सकते हैं. इन अपराधों की बहुतायत और सिद्धांत तथा व्यवहार के प्रश्न जो ये उठाते हैं, वर्तमान नैतिक जीवन के सबसे ज्यादा चौंकानेवाली परिघटना बनाते हैं.

आनुभाविक अध्ययन कहते हैं कि व्यापक रूप से अलग-अलग क्षेत्रोँ से आनेवाले लोग अपराधों के तुलनात्मक गंभीरता व्यवहारिक बुद्धि के आधार पर निर्णय ले सकते हैं और काफी समान निष्कर्ष पर आ सकते हैं.

*दोषिता* के रूप में अपराधों की गंभीरता के आयाम पर जनमानस ने हानि की तुलना में कम ध्यान दिया है. लेकिन ‘आदर्श दंड संहिता’ में दोषिता व्यवहार का विधायकों पर काफी प्रभाव रहा है. इस संदर्भ में ‘आपराधिक कानून’ पुस्तक का यह कथन ध्यान देने योग्य है-

*‘आदर्श दंड संहिता मन की चार अलग-अलग अवस्थाओं को निर्धारित करता है जो दोषिता को जन्म दे सकते हैं ,जो इस बात पर निर्भर करता है कि (1) उद्देश्यपूर्ण (2) जानबूझकर (3) लापरवाही (4)* उपेक्षा. यह*‘आदर्श दंड संहिता* आपराधिक अधिनियमों पर विशेष प्रभाव रखती है.दण्डों की अनुपातिकता सांसे अच्छी तरह से हासिल और संरक्षित की जा सकती है यदि दंड उन लोगों से जुड़ा होता है जो आपराधिक संविधि का मसौदा तैयार करते हैं और उसे लागू करते हैं- जो अनिवार्य सजा के माध्यम से होती है. यह देखते हुए कि *दोषिता* के साथ-साथ *हानिकारकता* को भी आपराधिक संविधियों द्वारा निपटा जा सकता है,आनुपातिकता पर आधारित कोई तर्क ऐसा नहीं है जो *अनिवार्य सजा* की बजाय *विवेकाधीन सजा* का समर्थन करता है. यह भी महत्वपूर्ण है कि एक अपराधी के खिलाफ दो बार कारण के रूप में  *नुकसान और दोषिता* की अनुमति नहीं है. यह कारक सही निर्धारित करते हैं कि उसको किस अपराध का आरोपी मानना चाहिए. किन्तु यदि उसने जो अपराध किया है उसको स्वीकार कर लिया है तो उसको सजा देते समय *हानि और दोषिता* को वापस महत्व नहीं मिलना चाहिए. सजा की आनुपातिकता को संरक्षित किया जाता है जब सजा उस अपराध केलिए फिट बैठती है जिसके लिए एक अपराधी दोषी ठहराया जाता है. दोषिता में यह विचार रहता है कि अपराध का कम या बदतर करने को आपराधिक संविधियों में सूत्र-रूप देना चाहिए, किसी न्यायधीश विशेष के पूर्वाग्रह के माध्यम से सजा को प्रभावित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए.

इस स्थिति में मैं ‘*सजा को कम करना’* और ‘*अपराध को कम करना’*  के बीच अंतर को नहीं बचा पाऊगी. ‘कम करने की शक्ति’ के कारण स्वयं अपराधों के ‘कम होने’ में निहित हैं. इनको संविधि में शामिल करना चाहिए. किसी अपराधी विशेष केलिए, सजा में उदारता के कारण हो सकते हैं किन्तु इनके आधार पर सजा को तब तक कम नहीं किया जा सकता जब तक कि ऐसे कारक भी न हो जो उसके अपराध को कम करते हैं. यदि अपराधी की सजा, उसने जो अपराध किया उसकी गंभीरता के अनुसार न होकर उदारता के तहत कम हुई है तो *घटाना* है *कम होना* नहीं है.

सजा की आनुपातिकता सबसे महत्वपूर्ण नैतिक विशेषता है. यह सबसे ज्यादा इस सिद्धांत में संरक्षित की जा सकती है यदि यह अनिवार्य सजा द्वारा निर्धारित की जाती है.

*एकरूपता-*

सजा की तीसरी विशेषता उसकी एकरूपता है. यह एक ऐसी विशेषता है जिसमें सजा केवल अन्य सजाओं से सम्बन्ध रखती है. फेंबेरन के शब्दों में, “यह एक तरह से *तुलनात्मक न्याय* है जिसमें एक ही वर्ग के सदस्यों के साथ इस या उस रूप में समान व्यवहार किया जाता है.” फिर जैसा कि हमने आनुपातिकता में देखा है कि बहुतों के द्वारा सजा में एकरूपता को स्वत:साक्ष्य के रूप में माना है. जो कहता है कि एक ही तरह के अपराध केलिए एक ही तरह की सजा होनी चाहिए अर्थात् ‘समान अपराध केलिए समान सजा’.

वस्तुतः इस मान्यता को लेकर कोई विवाद नहीं है. किन्तु बिंदु यह है कि यह इतना आसान नहीं है जितना पहली दृष्टि में प्रतीत होता है. कुछ प्रश्न ‘*समान अपराध*’ की उक्ति के चारों ओर केन्द्रित हैं जैसा कि न्यायधीश लोईस फोरेर कहते हैं “ अपराधों की नामावली बहुदा बड़े और छोटे अपराधों में अंतर नहीं करती है.” लेखिका इसको स्पष्ट करने केलिए दो तरह के अपराध ‘*चोरी’*  का उदाहरण देती हैं. जिसमें दो व्यक्ति चोरी करते हैं जिसमें एक कुछ भी लेने से भयभीत है और दूसरे उदाहरण में एक व्यक्ति कीमती आभूषण चुराता है और दूसरा सिक्का चुराता है.

इसका यद्धपि कोई कारण नहीं है कि क्यों आपराधिक संविधि में स्पष्ट रूप से निर्देशित नहीं किया गया है जैसा कि लोग चाहते हैं; और जो अपराध की परिभाषा देते हैं वे उसको या तो हानि या अपराध करनेवाले की मन:स्थिति अथवा दोनों को विशेष रूप से स्पष्ट कर सकते हैं. और यह प्रक्रिया उस स्थिति में स्पष्ट होना चाहिए जब अपराध *सम्पति की बजाय व्यक्ति* के खिलाफ है. जैसा कि आपराधिक संविधियां संशोधित और सुधारी गई, तो इसके बारे में यह पहेली कि कैसे कहा जाये जब अपराधी समान अपराध के दोषी हैं, ‘समान सजा’ की उक्ति थोड़ी कम कष्टप्रद है. अप्रियता की मात्रा चरित्रात्मक रूप से कुछेक कैद की सजा के साथ जुडी हुई है या निष्पक्ष विश्वसनीयता केलिए कुछेक जुर्माना लगा सकते हैं. और यह सजा की एकरूपता केलिए पर्याप्त वैध संकल्पना लगती है.

यह मानना अतिसरलीकृत होगा कि कैद केवल समय की अवधि में भिन्न है. कैदों की दशाएं, यहाँ तक कि राज्यों के अंदर कैदियों की स्थिति, उपलब्ध करवाए गए नौकरी-प्रशिक्षण, शैक्षिक कार्यक्रम, अपनी निगरानी के मापन में अंतर ने आश्चर्यजनक ढ़ंग से सह्वासियों के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डाला. जैसा की नये प्रतिशोधात्मकवादी जोर देते हैं कि स्वतंत्रता से वंचित होने का अनुभव सभी को समान रूप से गहरा अप्रिय होता है, इसलिए, जेल सजा कुछ हद तक सपरिणामी है.

कुछ दार्शनिक तर्क देंगे कि किसी वर्ग के सदस्य व्यवहार की समानता के हक़दार हैं न की लाभों और भारों के वितरण की. नैतिक संदर्भ में, फ्रेंकना की तरह ‘समान महत्व’ होना चाहिए. और क़ानूनी दृष्टि से सही प्रक्रिया और समान संरक्षण को मानने की ओर प्रवृत रहते हैं. यद्धपि, यह गलती होगी कि सजाओं की एकरूपता के सम्बन्ध में प्रक्रियात्मक और वास्तविक समानता के बीच भेद करने को बहुत जोर देंगे. दोषियों की समानता सजा में नहीं है जो एक ही तरह की है अपितु उन सजाओं में है जो आनुपातिक हैं. सजाओं में असमानता( भेदभाव) व्यवहारिक प्रमाण है कि कुछ दोषी आनुपातिक सजा नहीं पाते हैं.

यह नैतिक मान्यता कि सजाएं आनुपातिक होनी चाहिए, वस्तुतः अपने बुनियादी चरित्र में यह मांग है कि सजा एकरूप होनी चाहिए. यदि आनुपातिकता हमेशा मौजूद रहती है तो एकरूपता भी रहती है. इसलिए, यदि यह तर्क मजबूत है कि आनुपातिकता अनिवार्य सजा की मांग करती है, और यदि आनुपातिकता एकरूपता को सुनिश्चित करती है तो यह ध्वनित करती है कि अनिवार्य सजा उन सजाओं का पोषण करती है जो एकरूप हैं.

इस प्रकार, लेखिका तर्क देती हैं कि सजा केलिए नैतिक रूप से तीन मूल्यवान विशेषताओं का परीक्षण बताता है कि ये अनिवार्य सजा केलिए मजबूत आधार देती हैं. विवेकाधीन सजा के विरोध में प्रश्न पुनर्वास और सुधार के परीक्षण की दरकार रखता है. मुझे विश्वास है कि इस तरह के परीक्षण दिखायेंगे कि सजा के उद्देश्यों के रूप में ये नैतिक रूप से त्रुटिपूर्ण हैं.

**टिप्पणी**

|  |  |  |  |  |  |  |  |  |  |
| --- | --- | --- | --- | --- | --- | --- | --- | --- | --- |
| विधिक समाचार और जिला न्‍यायालयों के फैसले छत्‍तीसगढ़ राज्‍य विधिक सेवा प्राधिकरणसरल कानूनी शिक्षा ’’प्ली बारगेनिंग’’ अभिवाक चर्चा : दांडिक न्याय की सरल प्रक्रिया Media4U    12:30     भारतीय संसद ने दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन अधिनियम 2/2006 द्वारा एक नया अध्याय 21 (ए) (धारा 265-ए से 265-एल) ’’प्ली बारगेनिंग’’ नामक शीर्षक जोड़कर दांडिक प्रकरणों को शीघ्रता से निपटाने का एक सराहनीय कदम उठाया   |  |  |  |  |  | | --- | --- | --- | --- | --- | | आपराधिक मामलों में अब नहीं हो पाएगी सौदेबाजी  सौदेबाजी के जरिये निपटाने के लिए करीब दस साल पहले फौजदारी कानून में प्रावधान किया गया था।  आपराधिक मामलों में अब नहीं हो पाएगी सौदेबाजी  Bhaskar News  Oct 03, 2015, 05:52 AM IST  अजमेर।आपराधिक मामले को सौदेबाजी के जरिये निपटाने के लिए करीब दस साल पहले फौजदारी कानून में प्रावधान किया गया था। केंद्र सरकार ने अब इस कानून को समाप्त कर दिया है। हालांकि बीते साल में सौदेबाजी के इस कानून का उपयोग लगभग न के बराबर ही हुआ, क्योंकि एक तो इस कानून में केवल मुल्जिम को ही सौदेबाजी के लिए अर्जी देने का अधिकार था और दूसरा नैतिक रूप से भी यह कानून तर्कसंगत नहीं था।  केंद्र सरकार ने ही हाल में दंड प्रक्रिया संहिता 1973 में कई संशोधन किए हैं। नए संशोधन के तहत संहिता में 2006 में क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट 2005 से जोड़े गए प्ली बार्गेनिंग यानी तर्क सौदाकारी के प्रावधान को भी समाप्त कर दिया गया है। संहिता की धारा 265 ए से लेकर 265 एल तक सौदाकारी संबंधी प्रावधान जोड़े गए थे। इनके तहत चुने हुए फौजदारी मुकदमों में मुल्जिम को यह विकल्प दिया जाता था कि वह मजिस्ट्रेट के समक्ष अर्जी देकर पीड़ित पक्ष के साथ सौदेबाजी यानी बार्गेनिंग कर अपने मुकदमे की कार्रवाई में राहत प्राप्त कर सकता था। नैतिक रूप से अटपटे लगने वाले इस प्रावधान को सीधा समझा जाए तो अपराध करने वाले और पीड़ित के बीच यह सौदेबाजी की जाती थी कि अपराध के एवज में पीड़ित को कितनी रकम दी जा सकती है। इन स्थिति में हो सकतीथी सौदेबाजी >सीआरपीसी के तहत चालान पेश होने पर  >18 साल या उससे अधिक की उम्र के आरोपी के खिलाफ हो मुकदमा  > अपराध 14 साल तक की उम्र के बच्चों के प्रति नहीं होना चाहिए  > आरोपी पूर्व में सिद्ध दोष नहीं हो  > अपराध देश की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को प्रभावित नहीं करता हो। क्रिमिनल एंड अमेंडमेंट एक्ट 2005 में आईपीसी में संशोधन कर नई धारा 195ए जोड़ी गई थी। इसके तहत किसी व्यक्ति को झूठी गवाही या साक्ष्य देने के लिए उत्प्रेरित करने या मजबूर किए जाने संबंधी अपराध के लिए दंड का प्रावधान किया गया था। 7 साल तक की सजा के मामले तर्क सौदाकारी के प्रावधान सात साल तक की सजा के मामलों को निपटाने के लिए बनाए गए थे, जो सामाजिक अपराध से जुड़े हुए नहीं होते थे। मंशा यह थी कि ऐसे मामलों में पीड़ित को मुआवजा मिल जाए और अपराधी का दंड या तो पूरी तरह माफ हो जाए या फिर कम कर दिया जाए। इसमें मुल्जिम के साथ जांच अधिकारी और पीड़ित का सहमत होना जरूरी था। इस कानून का इस्तेमाल नहीं के बराबर होने का कारण भी खत्म करने का तर्क था।     |  |  | | --- | --- | |  |  | |  |  |   ’’प्ली बोरगेनिंग’’ अवधारणा के अंतर्गत अभियुक्त, अभियोजन व पीड़ित पक्ष आपसी सामंजस्य पूर्ण तरीके से प्रकरण के निपटारे हेतु न्यायालय के अनुमोदन से एक रास्ता निकालते हैं। इसके अंतर्गत अभियुक्त द्वारा अपराध स्वीकृति पर उसे हल्के दंड से दंडित किया जाता है, जो अन्यथा कठोर भारी हो सकता है। भारत में ’’प्ली बोरगेनिंग’’ का लाभ गंभीर अपराधों में नहीं उठाया जा सकता है।  ऐसे अपराधों में ’’प्ली बोरगेनिंग’’ लागू नहीं होता, जो मृत्यु दंड, आजीवन कारावास सात वर्ष से अधिक कारावास से दंडनीय होते हैं। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित श्रेणियों के अपराधों को भी ’’प्ली बोरगेनिंग’’ की परिधि से बाहर रखा गया है:- 1. ऐसे अपराध जो देश की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं। केंद्रीय सरकार ने अधिसूचना दिनांक 11 जुलाई 2006 द्वारा 19 अधिनियमों में वर्णित अपराधों को ’’प्ली बारगेनिंग’’ से अपवर्जित किया है। 2. महिलाओं के विरूद्ध अपराध। 3. 14 वर्ष से कम उम्र के बालक के विरूद्ध। सौदा अभिवाक् (’’प्ली बारगेनिंग’’) के आवेदन देने के लिए प्रक्रिया - पुलिस द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट (चालान) अथवा परिवाद प्रकरण में अभियुक्त ’’प्ली बारगेनिंग’’ हेतु आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। यह आवेदन शपथ पत्र द्वारा समर्थित होना चाहिए। अभियुक्त के आवेदन में यह वर्णित होना चाहिए कि उसने अपराध की प्रकृति को एवं दंड की सीमा को समझ लिया है और स्वेच्छा से आवेदन पेश कर रहा है। यदि अभियुक्त उसी अपराध में पूर्व में दोषसिद्ध हुआ हो तो वह ’’प्ली बारगेनिंग’’ के लिए अयोग्य होगा। आवेदन प्राप्त होने के पश्चात् सूचना:-   आवेदन प्राप्त होने के पश्चात् न्यायालय लोक अभियोजक, परिवादी/पीड़ित एवं अनुसंधानकर्ता अधिकारी को न्यायालय में उपस्थित रहने के लिए नोटिस जारी करेगा। न्यायालय उक्त पक्षों को आपसी संतोषजनक हल निकालने के लिए समय देगा।    |  |  | | --- | --- | |  |  | |  |  |